© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

लोकजीवन में धर्म का वैशिष्ट्य

अनुज कुमार निर्मल
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

भारतीय संस्कृति का प्राण धर्म है और लोक जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान है। धर्म एक ऐसा घटक है जो सम्पूर्ण विश्व के मापदण्ड को धारण करता है। धर्म भारतीय संस्कृति के गौरव पूर्ण इतिहस का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका साक्ष्य हमें वेदों से लेकर अर्वाचीन साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति धृ धातु से मन् प्रत्यय पूर्वक बतलाया गया है जिसका अर्थ है धारण करना। धारण करने से यहाँ अभिप्राय अच्छे विचारों, गुणों एवं कर्मों से है। धर्म को ही भारतीय समाज का वह सशक्त आधारशिला माना गया है जिस पर सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का भव्य भवन अवस्थित है। धर्म प्रत्येक प्राणी को आदर्श एवं गरिमामय जीवन मूल्यों के अपनाने के लिए प्रेरित करता है। क्योंकि धर्म ही ऐसा घटक है जो प्राणी के कर्त्तव्यों के बोध एवं निर्वहन को बतलाता है। महर्षिकणाद ने अपने कणाद्सूत्र में धर्म को बतलाते हुए कहते हैं कि–

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।[1]

अर्थात् जिससे लोक में और परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते हैं। महर्षि कणाद ने धर्म को मोक्ष रूप में स्वीकार किया है। यहाँ पर लोक और परलोक से आशय इस बात से है कि लोक में जो मनुष्य की यश कीर्ति आदि को प्राप्त करता है और परलोक में जो मोक्ष को प्राप्त करता है वह धर्म के कारण ही सम्भव हो सकता है।

धर्म को मनुष्य जीवन में उच्च स्थान दिया गया है। क्योंकि धर्म मनुष्य के हृदय की उच्च उदात्त एवं पवित्र भावना है जिसका आश्रय लेकर वह लोक में श्रेयस् की प्राप्ति करता है। धर्म के कारण ही मनुष्य में सात्त्विक प्रवृत्तियों का विकास होता है जो उसके उत्थान हेतु आवश्यक होती है। मनुस्मृति में कहा गया है कि–

IJSRST1845423 | Received : 03 July 2017 | Accepted : 25 July2017 | July-August-2017 [(3) 6: 764-768]

वेदः स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षर्द्धमस्य लक्षणम्।।[2]

अर्थात् इस श्लोक में मनुस्मृतिकार ने धर्म को बताते हुए कहते हैं कि वेद, स्मृति, सदाचार और मन की प्रसन्नता ये धर्म के साक्षात् लक्षण है। धर्म मनुष्य को जीवन जीना सिखलाता है। धर्म में वह सभी घटक निहित होते हैं जो एक मनुष्य के सुव्यवस्थित जीवन के निर्धारिक तत्त्व होते हैं। क्या कारणयी है क्या अकरणीय है इसका ज्ञान हमें धर्म से ही होता है। धम्र के लक्षण को बताते हुए मनुस्मृतिकार कहते हैं कि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[3]

अर्थात् धर्म के दश लक्षण है— (1) धैर्य, (2) क्षमा, (3) दम, (4) चोरी न करना, (5) पवित्रता (6) इन्द्रियों को वश में रखना, (7) सात्त्विकबुद्धि (8) अध्यात्मविद्या (9) सत्य (10) क्रोध न करना। इन धर्म के दशों लक्षणों का प्रयोग प्रतयेक प्राणों का आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है और जो इन सभी धर्मो के लक्षण का सम्यक् रूप से पालन करता है वह निश्चित ही अपने जीवन के उच्चतम शिखर को प्राप्त करता है। आगे धर्म को ही बताते हुए स्मृतिकार ने कहा है कि—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।[4]

अर्थात् सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञों द्वारा रचित धर्मशास्त्र., और उन वेत्ताओं के मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, और उनका आचार विचार इन सबका मूल स्त्रोत धर्म ही है। मनुस्मृतिकार की दृष्टि ही इतनी सूक्ष्म थी उन्होंने धर्म के प्रत्येक पहलू को परिलक्षित कर दिया जिसका ज्वलंत उदाहरण हमें मनुस्मृति में मिलता है।

लोक जीवन में धर्म के विशिष्टता को बतलाते हुए महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में कहा है कि—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

नित्यो धर्मः सुखदुःखेत्व नित्ये जीवो नित्यों हेतुरस्य त्वनित्यः।।[5]

अर्थात् कामना से, भय से अथवा प्राणभय से भी धर्म का तयाग न किया जाए। धर्म नित्य है और सुख–दुःख अनित्य। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धन का हेतु अर्थात् शरीर अनित्य है। महाकवि वेदव्यास मनुष्य को इस श्लोक के माध्यम से यह संदेश दिया है कि प्राणी को किसी भी परिस्थिति में धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि धम्र में ही उसका मूल निहित है। जो लोक जीवन के वैशिष्ट्य को बतलाता है। यह मानव का स्वभाव होता है कि वह विपरीत परिस्थितियों में नास्तिक बन जाता है जोकि वह क्षण क्षणिक होता है जिसका व्यापक दुष्प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। धर्म के सम्बन्ध में ही वेदव्यास का कथन है कि–

धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।

यः स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[6]

अर्थात् जो प्रजाओं को धारण करता है वह धर्म है। धर्म इस कारण धर्म कहलाता है। क्योंकि यहाँ कर्त्तव्यों के बोध की बात कही गयी है। उसी को धर्म के स्वरूप के अन्तर्गत माना गया है। महाभारत को तो धर्मकोश की संज्ञा दी जाती है। यहां पर धर्म सम्बन्धी अनेको आख्यान, उदा0 मिलते है जो लोक जीन को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। धर्म की व्यवहारिता पर कहा गया है कि युग तो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है किन्तु धर्म की नित्यता को शाश्वत रूप में सिद्ध की गयी है। वह हर युग हर काल में एक जैसा ही रहता है। उसमें कदापि परिवर्तन नहीं होता है।

आदिकाव्य रामायण में धर्म को बताते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि–

धर्मो हि परमोलोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।

धर्मसंश्रितप्येतत् पितुवर्चनमुत्तमम।।[7] **वा0रा0 2/21/41**

अर्थात् संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा है। पिता जी का यह वचन धर्म के आश्रित होने के कारण परम उत्तम है। इस प्रकार से भगवान श्रीराम ने अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए धर्म को प्रतिस्थापित किया है। यहाँ पर महर्षि वाल्मीकि ने धर्म की अवधारणा को मानव जीवन के मूल्यों के रूप में बतलाया है। क्योंकि सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण में राम का चरित्र ही धर्ममय है। जिन नैतिकता आदि के गुणों का समावेश रामायण में किया गया है वह सब धर्म के ही आश्रित ही है। धर्म को ही समझ कर भगवान श्रीराम पिता की आज्ञा मानते हुए चौदह वर्षों के लिए वन को प्रस्थान किया था जो कि वर्तमान में सम्भव नहीं है, जोकि

धर्म के कारण ही सम्भव हो सका है। प्रत्येक प्राणी का धर्म होता है कि चाहे वह राष्ट्र धर्म हो या कुल धर्म हो सभी का निर्वहन रामायण में बखूबी दिखलाया गया है। आनन्द रामायण में धर्म को कर्त्तव्य के रूप में बताते हुए कहा गया है कि–

लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्वामनुनिर्गतः।

तदादि निद्राहारादीन्न प्राप्तः स रघूत्तम।।[8]

अर्थात् आनन्द रामायण में धर्मपूर्वक कर्त्तव्यों के निर्वहन के सम्बन्ध में लक्षण के उत्तरदायित्वों के विषय में जो संयम दिखला गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है क्योंकि लक्ष्मण चौदह वर्षों तक आहार और निद्रा का त्याग करके प्रभु श्रीराम की सेवा में धर्मपूर्वक अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन किया, जो धर्म का अप्रतिम सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

धर्म के लक्षण को हितोपदेश में कहा गया है कि–

आधारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।[9]

अर्थात मनुष्य और पशुपक्षियों में शारीरिक क्रियाकलाप समान ही होता है परन्तु इन दोनो में अन्तर बुद्धि एवं ज्ञान के भेद से होता है और इसके कारण यदि कोई प्राणी धर्म को नहीं मानता है तो वह पशु के समान ही कहलाता है। इस प्रकार धर्म को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्म के तीन रूप स्वीकार किये जा सकते हैं ज्ञान, कर्म और उपासना। ईश्वर भक्ति का ज्ञान और उसके स्वरूप के विषय में जानना ही ज्ञान है। यज्ञादि कार्य को कर्म कहा जाता है। पूजा, स्तुति ध्यान आदि के माध्यम से अपने इष्ट के समीप पहुँचना उपासना है। इन तीनों का सम्यक् ज्ञान ही धर्म का उत्तम रूप होता है।

इस प्रकार लोक जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान है। धर्म प्राणी में अनुशासन रखने का कार्य करता है। धर्म के कारण ही विश्वबन्धुतव की भावना उत्पन्न होती है। भारतीय समाज तो पहले से ही वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को आत्मार्पित करता है। जहाँ सम्पूर्ण विश्व को परिवार के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका मूल धर्म ही है। धर्म के कारण ही मनुष्य प्रेम, सेवा, दया, करूणा, सहानुभूति, परोपकार इत्यादि की उत्पत्ति हाती है। जिससे विश्वकल्याण सम्भव होता है। धर्म सदैव लोकोत्थान का कारण होता है। भारतीय प्राचीन मनीषियों ने वेदों में धर्म के अनेक सूक्तों के माध्यम से ईश्वर की वन्दना की है साथ ही साथ सम्पूर्ण विश्व के

कल्याण की बात किया है। आचारः परमोधर्मः इत्यादि सूक्ति वाक्य धर्म को ही प्रतिस्थापित करते हैं। अतः लोक जीवन में धर्म की महती आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कणादसूत्र 1/1।
2. मनुस्मृति 2/12।
3. मनुस्मृति 6/92।
4. मनुस्मृति 2/6।
5. महाभारत शान्तिपर्व 5/63।
6. महाभारत शान्तिपर्व 108/11
7. वाल्मीकिरामायण 2/21/41
8. आनन्दरामायण 1/11/117
9. हितोपदेश।